© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 10 , Issue : 01 | January - March 2023

रसों की आनन्दरूपता

शोधार्थी, गीता यादव
संस्कृत विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

रसों की आनन्दरूपता का वर्णन करते हुए स्वामी सुरजनदास जी बताते हुए कहते हैं कि अभिनवगुप्त के अनुसार श्रृंगार, करूण, वीर आदि सभी रस आनन्द प्रदान करने वाले हैं। क्योंकि साधारणीकृत विभावादि उपायों से सामाजिक के हृदय में पहले से ही संस्काररूप में विद्यमान रति का जो भाव है वह देशकालव्यक्तिविशेषादि सभी विशेषताओं से अलग होकर के रतित्व रूप से ही अभिव्यक्त होती है। उसमें तन्मीयभाव के द्वारा जब सामाजिक मानव का चित्त रजोगुण व तमोगुण के अभिभव से युक्त सत्त्वगुण की प्रधानता से अन्तर्मुखी होकर आत्मा में निमग्न होता है तब वह साधारणीकृत रतिविशिष्ट आनन्दधन ज्ञानरूप आत्मा की अनुभूति करता है। आत्मा आनन्दस्वरूप है इसलिए आनन्द की ही प्रतीति होती है। यद्यपि रस के आस्वादन के समय सामाजिक का चित्त परिपक्व योगी की तरह शुद्ध आत्म की अनुभूति नहीं करता है। वहाँ पर सुख–दुःखात्मक रति आदि भावों की भी स्थिति होने से सुख के साथ दुःख की प्रतीति भी संभव है। अतः रस को इस तरह एकान्ततः आनन्दरूप नहीं माना जा सकता है। जब रति आदि भाव लोक से जुड़े होते है तभी वह लौकिक सुखदुःख के जनक होते है। सब प्रकार से लोक सम्बन्ध से हट जाने पर उनमें न तो सुखात्मकता रहती है और न ही दुःखात्मकता रहती है। जैसे पुत्र की उत्पत्ति सुखजनक होती है किन्तु वह सुखजनक तभी है जब उस पुत्र के साथ हमारा स्वत्वसम्बन्धरहित जुड़ा रहता है। जैसे स्वत्वसम्बन्धरहित पड़ोसी के लिए वह पुत्र सुख का कारण नहीं है। इसी प्रकार पुत्र के वियोग का शोक उसी व्यक्ति को होगा जिसके साथ उसके स्वत्व– सम्बन्ध है। पड़ोसी को पुत्र के वियोग का शोक नहीं होगा। इससे यह सिद्ध है कि लौकिक पदार्थ तभी तक सुखजनक व दुःखजनक होते हैं जब उनके साथ व्यक्ति का स्वकीयत्व व परकीयत्व सम्बन्ध बना हुआ है और उस सम्बन्ध के हट जाने पर न तो वे सुखजनक होते है और न ही दुःखजनक होते हैं। इसी प्रकार रसास्वादन काल में आस्वाद्यमान रति आदि लौकिक सर्वविध विशेषताओं का परित्याग करके लोकसम्बन्ध से रहित हो गये हैं। अतः उन साधारणीकृत भावों में उस समय न तो सुखजन्य है और न ही दुःखजन्य। इन्दुमती की मृत्यु पर अज का शोक तभी दुखजन्य है जबकि उसका इन्दुमति की मृत्यु से पहले इन्दुमति के साथ घनिष्ठ प्रेम प्रसंगों की स्मृति से सम्बन्ध

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 10 , Issue : 01 | January - March 2023

है। इन सब लोकवस्तुओं और लोकपरिस्थितियों के सम्बन्ध के दूर हो जाने पर निरपेक्ष शोक कभी दुखजनक नहीं हो सकता।

अतः रसास्वादन काल में साधारणीकृत रूप से उत्पन्न शोक आदि भाव का लोक सम्बन्ध से रहित होने के कारण दुखजनक नहीं होते है। उस समय आनन्दवर्धन शोक आदि प्रतीति का ही आस्वादन होता है। इस प्रतीति में आनन्दघनता आनन्दरूप आत्मा के कारण है। इसलिए अभिनवगुप्त ने कहा है कि 'अस्मन्मते संवेदनमेवानन्दघन– मास्वाद्यते। तत्र का दुःखाशङ्का। केवलं तस्यैव चित्रताकरणे रतिशोकादिवासनाव्यापारः, तदुद्बोधने चाभिनयादिव्यापारः।' (अभिनवभारती, पृ० 292)

इसका तात्पर्य यह है कि रसास्वादन वेला में अभिनय आदि व्यापार उत्पन्न संस्काररूप साधारणीकृत रति शोक आदि भावों का भी सम्बन्ध रहता है। वे भाव सर्वविधलोक सम्बन्ध से अतीत होने के कारण सुखदुखजनकता से तो रहित है किन्तु उस आनन्द में स्वोपरंजन द्वारा विचित्रता पैदा करते है। अतः वह शुद्ध आत्मप्रतीति न होकर रति आदि से चित्रित आत्मप्रतीति होती है। इसलिए इस प्रतीति को ब्रह्मस्वाद न कहकर ब्रह्मस्वादसहोदर कहा जाता है और इसी कारण सभी रसों में आत्मप्रतीति के एक रूप होने पर भी उसमें विचित्रता के जनक रति आदि के संस्कार के कारण उसके शृंगार, हास्य, करूण आदि विभिन्न नाम भी हो गये है। आनन्द की प्रतीति में विचित्रता पैदा करने वाले भाव रति आदि नौ है। इसलिए शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत व शान्त ये नौ ही रस है।

अभिनवगुप्त का कहना है कि इस लोक में भी लौकिक शोक का अनुभव करते हुए तन्मयीभाव के द्वारा उस शोक से सम्बन्धित स्व, पर आदि व्यक्ति विशेषों का, शोक के कारण मृत व्यक्ति आदि लौकिक वस्तुओं का तथा लौकिक परिस्थितियों का परिहार हो जाता है। तब एकमात्र शोक का अनुभव रह जाता है और इसी में शोक करने वाले व्यक्ति की हृदय–विश्रान्ति हो जाती है तथा उस समय उसे शोकजन्य दुःख का लेशमात्र भी भान नहीं होता और सुख का ही भान होता है। इस प्रकार करुणरस में जब शोक का अनुभव जब सामाजिक का होता है तब शोकसंविच्चर्वणा में सामाजिक की निर्विघ्न हृदयविश्रान्ति हो जाने के कारण करुणादि रस भी आनन्दरूप ही होते है।[1]

---

[1] तत्र सवैऽमी सुखप्रधानाः। स्वसंविच्चर्वणारूपस्यैकघनस्य प्रकाशस्यानन्दसारत्वात्। यथा हि – एकघनशोकसंविच्चर्वणेऽपि लोके स्त्रीलोकस्य हृदयविश्रान्तिरन्तरायशून्यविश्रान्तिशरीरत्वात् सुखस्यः। (अभिनवभारती, पृ० 282)

आचार्य भरतमुनि को रसों की आनन्दरूपता ही स्वीकार है। इसलिए उन्होंने रसास्वादन से हर्ष की प्राप्ति बतलायी है। यथा – 'नानाभावाभिव्यंजितान् वागङ्गसत्त्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति समुनसः प्रेक्षकाः हर्षादीश्चाछिगच्छन्ति'। (नाट्यशास्त्र, पृ० 289)

यहाँ आदि पद से शोक का ग्रहण नहीं है बल्कि रसास्वाद उत्तरकालिक होने वाले धर्म, अर्थ, काम आदि पुरुषार्थों में वैदग्ध्यप्राप्ति का ग्रहण है। क्योंकि निर्मलचित्त वाले तथा भाव के साथ तन्मयीभाव वाले सामाजिकों में दुःख की संभावना ही नहीं है। जैसे उदाहरण में नानाव्यंजन अन्न को ग्रहण करने वाले एकाग्रचित्त पुरुषों में मधुर आदि रसों के आस्वादन से कभी दुख नहीं होता अपितु खुशी ही होती है। यहाँ पर हर्षादि में आदि पद से हर्षजन्य पुष्टि, जीवन, बल, आरोग्य आदि का ही ग्रहण होता है, दुःख का नहीं। उसी प्रकार उदाहरण में आदि पद से धर्मादि में वैदग्ध्यप्राप्ति का ही ग्रहण होता है शोक का नहीं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि रसास्वादन से हर्षादिप्राप्ति बतलाते हुए भरत रसों का आनन्दरूपता ही स्वीकार करते है।

अभिनवभारती के प्रथम, द्वितीय व षष्ठ अध्याय के हिन्दी व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि अभिनव रसों को सुखदुःख उभयात्मक मानते है न कि एकान्ततः सुखात्मक। यथा –

'योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुखसमन्वितः।
सोऽङ्गाद्यभिनभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।'

(नाट्यशास्त्र प्रथम अध्याय, कारिका 119)

उन्होंने उपर्युक्त कारिका की व्याख्या में चर्वणीय अर्थ रत्यादिभावों को ''सुखदुख– विचित्रेण समनुगतः सोऽर्थः। न तु तदेकात्मा'' (अभिनवभारती, पृष्ठ 43) में सुखदुखोभया– त्मक कहा है और एकान्ततः सुखात्मकता व दुःखात्मकता का निषेध किया है तथा आगे इसी को स्पष्ट करते हुए रति, हास, उत्साह तथा विस्मय भावों को सुखस्वभाव और क्रोध, भय, शोक, जुगुप्सा भावों को दुःखरूप कहा है।[2]

अभिनवगुप्त ने रति आदि चार भावों की सुखस्वरूपता तथा क्रोध आदि चार भावों की दुखरूपता का प्रतिपादन करके 'एवं लौकिका ये सुखदुःखात्मानो भावाः' इस कथन के द्वारा लौकिक रति आदि भावों को सुखात्मक बतलाया है। किन्तु साधारणीकरण के द्वारा लोकसम्बन्धातीत अलौकिक संस्कार

[2] अभिनवभारती, पृ० 43

रूप रत्यादि भावों को उभयात्मक नहीं कहा है। लौकिक रति आदि की भावों का सुखस्वरूप होना तथा क्रोध आदि भावों का दुखस्वरूप होना तो लोकदृष्टि के अनुसार सभी को मान्य है। प्रश्न साधारणीकृत, लोक—सम्बन्धातीत, अलौकिक सहृदय के द्वारा अनुभवीय संस्काररूप रत्यादिभावों का है। उनकी चर्वणा तो हमेशा आनन्दरूप ही है। इसलिए अभिनवगुप्त ने लौकिक भावों को नाट्य नहीं कहा है किन्तु आंङि्गक आदि अभिनय प्रक्रिया से प्रत्यक्षकल्प बने हुए अलौकिक रत्यादि भावों को नाट्य कहा गया है।

लौकिक सुख—दुख स्वभाव रति आदि ही आङि्गक आदि अभिनयप्रक्रिया के द्वारा लोकसम्बन्ध का अतिक्रमण करके साधारणीभाव को प्राप्त होकर अलौकिक और आस्वाद्य बनता है तब वह नाट्य अर्थात् रस कहलाता है। ये आंगिक आदि अभिनय ही लौकिक सुख—दुखात्मक रत्यादि भावों को साधारणीकरण प्रक्रिया के द्वारा लोकसम्बन्ध से अलग अलौकिक दशा में पहुँचाकर तथा उन्हें आस्वादयोग्य बनाकर श्रृंगारादि रसाभिमुख बनाते हैं। अभिनवगुप्त ने 'अङ्गाद्यभिनयोपेतः' की दूसरी व्याख्या भी की है – अर्थात् यहाँ अंग शब्द स्थायिभावों के अंगभूत व्याभिचारि भावों का बोधक है। आदि शब्द विभावों का बोधक है तथा अभिनयशब्द अनुभावों का बोधक है। ये तीनों लौकिक सुख—दुःखात्मक रत्यादिभावों को साधारणता के द्वारा श्रृंगारादि – रसाभिमुखता प्राप्ति के योग्य बनाने वाले हैं अतः इन्हें अभिनय कहा है। जैसा कि 'विभावानुभाव– व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' इस सूत्र के द्वारा बतलाया गया है। इन्हीं के द्वारा लौकिक रत्यादि स्थायी स्वभाव साधारण व अलौकिक बनकर सामाजिक के ज्ञानदर्पण पर संक्रान्त होते हैं, तभी वह रसनाप्रतीति का विषय बनकर रस कहलाते हैं। यही नाट्य है।[3]

यह नाट्यरूप अर्थ रसास्वादन के पश्चात् अलौकिकता से अलग होकर पुनः लौकिक बन जाता है। तब सुखदुःखरूप फल से युक्त होता है और उसके अनुसार ही हान उपादानबुद्धि का विषय भी बनता है। किन्तु यह सुखदुःखरूप फल से युक्तता रसास्वादन के बाद की है। इसलिए 'सुखदुःखसमन्वितः' कहा है। क्योंकि सुखदुःख रूपी फल का संबंध रत्यादि भावों के रसास्वादन के बाद की लौकिक स्थिति में आने पर होता है।[4]

---

[3] अभिनवभारती, पृ० 44

[4] अभिनवभारती, पृ० 45

© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 10 , Issue : 01 | January - March 2023

इन तथ्यों से स्पष्ट है कि अभिनवगुप्त रत्यादि भावों में सुखदुखात्मकता लोक में स्वीकार करता है। साधारणीकरण द्वारा अलौकिक स्थिति को रसास्वादनदशा में स्वीकार नहीं करता है।